रोज़ो के फ़ायदे

आयतुल्लाह अल्लामा सै० मुहम्मद रज़ी साहब किब्ला
अनुवादकः तज़हीब नगरौरी

सूर-ए-बक़रा आयत 183 में अल्लाह ने फ़रमाया है किः-

"ऐ ईमान वालो! तुम पर रोज़े उसी तरह फ़र्ज़ किये गये हैं जिस तरह उन लोगों पर फ़र्ज़ किये गये थे जो तुमसे पहले गुज़रे हैं ताकि तुम परहेज़गार बन जाओ ये गिनती के कुछ दिन हैं।"

अल्लाह के इस फ़रमान से ये बात ज़ाहिर हो गई कि रोज़े फ़र्ज़ किये जाने का असल मक़सद यही है कि लोगों के दिलों में अल्लाह का ख़ौफ़ पैदा हो और वह अमल के एतेबार से सच्चे मुसलमान बन जाएं और परहेज़गार हो जाएं इस बुनियाद पर वह रोज़ा हक़ीक़ी माने में रोज़ा नहीं हो सकता जिसके रखने वाले में परहेज़गारी की ख़ूबी न पैदा हो सके। इसी बात की तरफ़ एक हदीस में सरवरे कायनात[स०] ने इरशाद फ़रमाया है जिसका मतलब ये है कि ***"अगर कोई शख़्स रोज़ा रख कर भी गुनाहों को न छोड़े तो फिर अल्लाह को इसकी ज़रूरत नहीं है कि वह शख़्स अपना खाना-पीना छोड़ दे"*** और कभी आपने इस तरह फ़रमाया जिसका तर्जुमा ये है कि "कितने ही ऐसे रोज़ेदार हैं जिन्हें भूखा-प्यासा रहने के सिवाए कुछ भी हासिल नहीं होता" इसका नतीजा साफ़ तौर पर यही निकलता है कि 'सौम' यानी रोज़ा सिर्फ़ भूखे और प्यासे ही रहने का नाम नहीं हो सकता और इन तमाम शर्तों का निचोड़ यही है कि रोज़ा रखने वाला उन सभी बातों से अपने आपको बचाए रखे जो परहेज़गारी से दूर करने वाली हैं और जिस्म को उन सभी बुराईयों से बचाए जिनसे शरीअत ने रोका है। रोज़े में जहाँ और बहुत से फ़ायदे हैं और जिस्म की सैकड़ों बीमारियाँ दूर हो जाती हैं, एक बड़ा फ़ायदा ये भी है कि इससे आपस की मुहब्बत और आपसी हमदर्दी के जज़्बे में बहुत ज़्यादा बढ़ोतरी होती है और अगर ये जज़्बा बिल्कुल ही न हो तो इसको पैदा कर देता है। और इस तरह मुसलमानों की एकजुट ज़िन्दगी में एक नई रूह पैदा हो जाती है। हम इस बात को इस तरह आसानी से समझ सकते हैं कि जब तक कोई शख़्स ख़ुद किसी मुसीबत और तकलीफ़ में न फंसे उस वक़्त तक उसे दूसरों की तकलीफ़ का सही तरह एहसास नहीं होता। इसलिए जब कोई रोज़ा रखता है और उसे दिन भर भूखा और प्यासा रहना पड़ता है और वह उस वक़्त ज़िन्दगी के बहुत से मज़ों से भी महरूम हो जाता है तो उसका नतीजा ये होगा कि उसके दिल में ग़रीब, परेशान और भूखे लोगों का भी ख़याल आ जायेगा जिन पर कई-कई दिन गुज़र जाते हैं मगर उन्हें खाने की कोई चीज़ नहीं मिल पाती। इस रोज़ेदार के दिमाग़ में उन बेचारों और बेसहारा लोगों की तकलीफ़ समझ में आयेगी और उनसे हमदर्दी का एहसास पैदा होगा। इस तरह अमीर और ग़रीब, बड़े और छोटे सब में आपसी मुहब्बत व एकता पैदा होगी और आपसी मदद की तरफ इस्लामी समाज का हर शख़्स झुकेगा। इसी बात की तरफ़ हुज़ूर सल-लल्लाहु अलैहि व आलिही वसल्लम ने अपने मशहूर ख़ुतबे में इरशाद फ़रमाया था कि जो शख़्स

अपने एक मोमिन भाई का रोज़ा इफ़्तार कराये उसे एक गुलाम आज़ाद करने के बराबर सवाब मिलता है। अगरचे वह इफ़्तार ख़जूर के आधे दाने ही पर या पानी के एक घूँट ही पर क्यों न हो।

ये हुक्म इसलिए दिया गया था कि मुसलमानों में इज्तेमाअी रूह उभरे और आपसी मदद और हमदर्दी का शौक़ पैदा हो क्योंकि कोई एक हो या पूरी क़ौम किसी को भी आपसी मदद के बिना कामयाबी नहीं मिल सकती।

रोज़ा और रूहानियत

हर मुसलमान इस हक़ीक़त को जानता है कि रोज़ा इस्लामी अरकान में से एक अहम रुक्न है। और ये वह इबादत है जो दुनिया के पहले नबी हज़रत आदम अलैहिस्सलाम से लेकर आख़िरी रसूल हज़रत ख़ातमुल अम्बिया[स०] तक हर पैग़म्बर के ज़रिये से उनकी उम्मत को बतायी गयी और इस उम्मत पर फ़र्ज़ की गयी। हज़रत आदम[अ०] के ज़माने तक हर महीने के तीन रोज़े फ़र्ज़ भी थे यानी 13, 14, और 15 के। इन ही तीन दिनों को ''अय्यामे बीज़'' यानी ''नूर के दिन'' कहा जाता है। फिर हज़रत नूह[अ०] के बाद जो-जो शरीअतें आती रहीं उनमें दिनों और ज़माने के कुछ बदलाव के साथ रोज़े का हुक्म बाक़ी रहा।

सरवरे कायनात[स०] की उम्मत को जो ख़ैरुलउमम क़रार दी गयी है रमज़ान के महीने के रोज़ों का हुक्म शाबान 2 हिजरी में मिला था। अब हमें इस बात पर भी ग़ौर करना चाहिए कि ''रोज़ा'' कहते किसे हैं और सही मानों में रोज़ेदार कौन हो सकता है?

क्या सिर्फ़ एक ख़ास वक़्त से एक ख़ास वक़्त तक दिन भर सिर्फ़ भूखे और प्यासे ही रहने का नाम रोज़ा है या इसके लिए कुछ ख़ास शर्तें भी हैं जिनके बिना हक़ीक़ी माने में ''रोज़ा'' नहीं हो सकता। तो हम देखते हैं कि हमें ''रोज़े'' के कुछ अहकाम भी सिखाये गये हैं और कुछ शर्तें और ख़ूबियाँ बतायी गयी हैं जिनके बिना वह असली मक़सद हासिल नहीं हो सकता जिसके लिए ''रोज़ा'' रखा जाता है। यानी परहेज़गारी और तक़वा और जिसकी तरफ सूर-ए-बक़रा में उसी जगह पर जहाँ ''रोज़े'' के फ़र्ज़ होने का एलान किया गया है। ***''लअल्लकुम तत्तक़ून''*** का जुमला फ़रमाकर अल्लाह ने हमें ध्यान दिलाया है। ''तक़वा'' उस ख़ूबी का नाम है कि इन्सान उन सभी बातों से अपने आपको बचाए जिन्हें अल्लाह ने बुरा क़रार दिया है और उन बातों पर अमल करे जिनका उसको हुक्म दिया है। जैसे झूठ न बोले, चोरी न करे, रिश्वत न ले न दे, किसी पर ज़ुल्म न करे, किसी का माल ज़बरदस्ती न छीने, किसी को तकलीफ़ न पहुँचाए, किसी की पीठ पीछे बुराई न करे, रिश्तों को न तोड़े, किसी का हक़ न मारे, ख़ूब माल इकटठा करके न रखे, इस्तेमाल होने वाली और दूसरी कारोबारी चीज़ों में मिलावट न करे, किसी को धोका न दे, मुँह से बुरे और गन्दे लफ़्ज़ न निकाले और इसी तरह के दूसरे इस्लामी हुक्मों पर पूरा-पूरा अमल करे वरना अगर कोई अल्लाह के अहकाम और इस्लामी अख़लाक़ से हटा तो फिर दो बातों में से एक बात ज़रूरी है या तो वह बिल्कुल रोज़ा ही बाक़ी न रहेगा या फिर सिर्फ़ दिखावे का रोज़ा होकर रह जायेगा और फ़ाक़ा यानी भूख प्यास के अलावा उसको कुछ भी हासिल न होगा।

''रोज़े'' का सबसे बड़ा मक़सद दिल की पाकी और रूह का सुधार है क्योंकि इसके बिना सही और असली इस्लामी और ईमानी ज़िन्दगी को सोचा भी नहीं जा सकता है।

एक बुनियादी बात ये है कि इन्सान के दिल में गुनाह की तरफ शौक़ अक्सर दिली और इन्सानी चाहतों के ज़्यादा होने की वजह से पैदा होता है और रोज़ा वह अमल और वह इबादत है जिसकी वजह से उन इन्सानी और दिली चाहतों का ज़ोर टूट जाता है और अपने आप इन्सान अच्छे कामों की तरफ बढ़ने लगता है।

हज़रत ईसा बिन मरियम[अ०] ने अपने साथियों से

कहा था कि इन्सान के दिल की गहराई से बुराईयों का क़िला तोड़ना और उन्हें मिटाना और दूर करना सिर्फ़ दो बातों ही से मुमकिन हो सकता है एक तो नमाज़ और दूसरी रोज़ा है बिना इन दो बातों के इन्सान की रूह और उसके दिल की गहराई से बुराई की जड़ नहीं कटती शर्त ये है कि नमाज़ अपनी पूरी खूबियों के साथ एक सच्चे मुसलमान की सच्ची नमाज़ हो और रोज़ा अपनी सभी शर्तों के साथ एक सच्चे अल्लाह को एक मानने वाले का सच्चा रोज़ा हो और मोमिन के कानों में ये इलाही आवाज़ आने लगे कि ***''मेरे मोमिन बन्दे का रोज़ा सिर्फ़ मेरे लिये ही है और अब उसके लिए इस रोज़ का बदला मैं ख़ुद ही हूँ या इसका बदला मैं ख़ुद ही दूँगा''***।

रोज़ा और आपसी हमदर्दी

शुरु में दी गयी आयत में रोज़े का मक़सद परहेज़गारी क़रार दिया गया है। इसलिए अगर किसी शख़्स का रोज़ा उसकी परहेज़गारी की वजह न बने तो हक़ीक़त में वह रोज़ा नहीं बल्कि सिर्फ़ फ़ाक़ा है। रोज़े में जहाँ और फ़ायदे हैं कि रोज़ा जिस्म और रूह को बहुत सी बुराइयों से दूर करता है एक बड़ा फ़ायदा ये भी है कि रोज़ा आपस की मुहब्बत और हमदर्दी के जज़्बे को बढ़ाता है और अगर ये जज़्बा नहीं पाया जाता है तो उसे पैदा कर देता है। ये सही बात है कि जब तक किसी पर कोई मुसीबत नहीं पड़ती और उसे कोई तकलीफ़ नहीं होती उस वक़्त तक उसे दूसरे की तकलीफ़ का एहसास नहीं होता इसलिए जब कोई रोज़ा रखता है तो उसे सुबह से शाम तक भूका और प्यासा रहना पड़ता है और वह दिन भर के लिए ज़िन्दगी के बहुत से मज़ों से भी महरूम हो जाता है। ऐसी हालत में ये ज़रूरी है कि उसके दिल में उन भूकों का भी ख़याल आ जाए जिनके पास फ़ाक़ा तोड़ने या रोज़े के इफ़्तार का भी सामान मौजूद नहीं होता और रोज़े में भूख और प्यास और खाने पीने के मज़ों से महरूम होकर वह लोग जो कभी ग़रीबों की मुसीबत को पूरी तरह नहीं समझ सकते थे अब समझने लगें, उनको समझ आ जाये, उनका एहसास जाग जाये और वह अपने ग़रीब और लाचार भाईयों की भूख और मुसीबतों का ख़याल करने लगें। इस तरह इस रोज़े की वजह से हर शख़्स के दिल में दूसरे से मुहब्बत व हमदर्दी का शौक़ पैदा हो जाता है अपने दूसरे भाइयों की तकलीफ़ों का और मुसीबतों का एहसास होने लगता है। हज़रत सरवरे कायनात स० का एक मशहूर ख़ुतबा है जिसमें आपने इरशाद फ़रमाया है कि रमज़ान बरकत, रहमत और मग़फ़िरत का महीना है इस महीने की दूसरी फ़ज़ीलतों और बरकतों को बताते हुए आपने फ़रमाया है ''मुसलमानों के लिए ज़रूरी है कि वह ख़ासकर इस महीने में ग़रीबों और बेचारों का ख़याल रखें, बड़ों का अदब करें, छोटों पर मेहरबानी करें, अपनी ज़बान को बुरी बातों से बचायें इसी तरह कानों और आँखों को भी गुनाह से बचायें, यतीमों पर रहम करें और अपने गुनाहों से तौबा करें।''

इसके बाद सरवरे कायनात ने इरशाद फ़रमायाः जो शख़्स तुम में से किसी दूसरे शख़्स का रोज़ा इफ़्तार कराता है तो ख़ुदा उसे एक ग़ुलाम आज़ाद करने का सवाब देता है। और उसके गुनाहों को माफ़ करता है। ये सुनकर अस्हाबे किराम रिज़०अ० ने रसूल स० की ख़िदमत में सवाल किया हुज़ूर! हम में तो बहुत से लोग ग़रीब हैं जो दूसरे के लिए इफ़्तारी का सामान नहीं कर सकते, तो आपने फ़रमाया ***''अगर तुम उस रोज़ेदार को खजूर का सिर्फ़ आधा हिस्सा ही दे दो या पानी का एक घूँट ही पिला दो जब भी तुम्हें यही सवाब मिलेगा''***। क्योंकि सवाब दिल की नियत और सच्चाई पर मिलता है इसलिए इफ़्तारी के सामान के कम या ज़्यादा होने पर सवाब की बुनियाद नहीं है। आप फ़रमाते हैं कि इस महीने में लोगों के साथ जो अपने अख़लाक़ को ठीक रखेगा उसके क़दम क़यामत के दिन पुलेसिरात पर से

(बक़िया...... पेज 13 पर)

हम क़ानून को अपनी बपौती समझने लगते हैं जिसके बाद ऐसे-ऐसे बचकाना क़दम उठाते हैं कि आख़िर में वह क़ानून ही मुर्दा समझा जाने लगता है। असल राज़ ये है कि हम, क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला ऐसे को बना देते हैं जो माद्दियात में घिरा हुआ है दिमाग़ में शहंशाहियत बसी हुई है। ज़्यादा से ज़्यादा खुद फ़ायदा उठाने का भूत सवार है। अपने क़रीबी ख़ानदान वाले, मिलने वाले, शहर वाले, अफ़राद के लिए क़ानून में सहूलतें बरती जाती हैं जब दूसरे लोग देखते हैं कि हक़दार होने के बाद भी हम महरूम हैं तो वह किसी ऐसे को चुनते हैं जिससे उनको ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँच सके।

इसलिए मुल्क में लड़ाइयाँ होने लगती हैं क़त्ल, ख़ून और फ़साद की वारदातें होती हैं ये सिर्फ़ क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाले की ग़लती के ख़तरनाक नतीजे होते हैं लेकिन अगर यही क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह से महसूस करे, दिली चाहतों और बेजान ख़यालों से हटकर एक सही हिफ़ाज़त करने वाला साबित हो, तो उसकी हर बात और काम में ऐसा वज़न पैदा हो जाए जिसके बाद फिर किसी इख़्तेलाफ़ की जगह ही न पैदा हो और इसके बाद भी जो मुख़ालेफ़त करेंगे वह जुर्म करने वाले गिरोह, या जानवरों की किसी भीड़ में गिने जायेंगे।

इसलिए मालूम हुआ कि क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाले को अपनी पूरी ज़िम्मेदारी का एहसास होना चाहिए क़ानून को लागू करने के मामले में सभी ज़ाती ताल्लुक़ात को छोड़ देना चाहिए जब हिफ़ाज़त करने वाला ऐसा होगा तब क़ानून बनाने वाले की चाहत के हिसाब से अमल हो सकेगा। 

बक़िया...... रोज़े के फ़ायदे

गुज़रते वक़्त नहीं लड़खड़ायेंगे और वह आसानी से उस पर से गुज़र जायेगा हक़ीक़त ये है कि साल भर में ये एक महीना ऐसा है जिसमें इस्लामी तालीमात पर अमल करने का मौक़ा मिलता है और मुसलमान को उसके ज़ाती और जमाअती, घरेलू और शहरी ज़िन्दगी के फ़र्ज़ पूरे करने और उनका एहसास करने की बड़ी तरबियत हासिल होती है। रोज़े का असली मक़सद इन्सान के जिस्म और रूह का सुधार है। इस सुधार के लिए हमें इस पाक महीने में दो बड़े रास्ते दिखाये गये हैं। एक क़ुरआन पाक और दूसरे रोज़ा। रोज़ा हमारी रूह को जगाता और हमारे सोये हुए एहसास को ज़िन्दगी देता है और हमें इस क़ाबिल बनाता है कि हम क़ुरआन पाक की हिदायत की नेमत को हासिल कर सकें, उसके नूर से अपनी रूह और दिल और दिमाग़ के अन्धेरों को दूर करें और हम में उस भाइचारगी और हमदर्दी का शौक़ पैदा हो जाए जो इस्लामी ज़िन्दगी का एक बड़ा निशान है। रोज़ा जिस तरह ग़रीबों पर फ़र्ज़ है उसी तरह अमीरों पर भी फ़र्ज़ है। जिस तरह आम लोगों पर उसी तरह हुक्मरानों पर उसका रखना ज़रूरी है सिवाए उन लोगों के जो शरीअत में अलग रखे गये हैं। रोज़ा रखने से इन्सान में जो सब्र और बर्दाश्त करने की ताक़त पैदा होती है वह ज़िन्दगी के हर रास्ते में काम आती है और अच्छे-अच्छे खानों से पेट भर कर हम जिस आपसी हमदर्दी के जज़्बे और दूसरों की भूख के एहसास से अनजान रहते हैं खुद हमारी भूख की सख़्ती उस जज़्बे को सामने लाती है और रोज़ा बराबर एक महीने तक हमारे इसी जज़्बे को बढ़ाता रहता है। हम मस्जिदों में जाते हैं। जमाअत की नमाज़ों में शरीक होते हैं, आपस में मिलजुल कर और साथ बैठकर रोज़ा इफ़्तार करते हैं, एक दूसरे के हालात की ख़बर लेने का मौक़ा मिलता है, जिसके बाद दिल में फ़ितरी तौर पर ख़िदमत और अच्छा सुलूक करने की चाहत पैदा हो जाती है।

ये कितनी बड़ी सीख है मुसीबतों पर सब्र करने की और प्यास को बर्दाश्त करने की! और आपस में एक दूसरे के दुख दर्द का एहसास करने की! अमन और आराम से रहने वाले शहरी हों या जंग के मैदान के भूखे सिपाही हों हर मुसलमान को दूसरे मुसलमान की भूख और तकलीफ़ का एहसास हो जाता है और उसमें क़ुर्बानी और हमदर्दी की वह उमंग पैदा हो जाती है जो किसी दूसरे रास्ते से मुमकिन नहीं हो सकती। 